International Journal of Education and Science Research Review
Volume-3, Issue-2 April- 2016 E-ISSN 2348-6457 P-ISSN 2348-1817
www.ijesrr.org Email- editor@ijesrr.org

राष्ट्रीय आन्दोलन की जागृति पर स्वामी विवेकानन्द और रामकृष्ण मिशन का प्रभाव

Dr.Deepak Kumar
History
CCS University
Meerut

1857 के स्वाधीनता संग्राम में ब्रिटिश दमन चक्र का शिकार हो जाने के कारण भारत थोड़े दिनों के लिए राजनीतिक संघर्ष के क्षेत्र में निष्क्रिय–सा हो गया। किन्तु देश की चेतना तो मरी नही थी, अतः जागृति की धारा अराजनीतिक क्षेत्रों में बहने लगी।

1857 के बाद मुख्यतः धार्मिक एवं सामाजिक स्तर पर ही आन्दोलन चलता रहा। कर्मकाण्डी धर्म के आडम्बरों और रूढ़ियों से विद्रोह करके प्रगतिशील धर्म–विधान का प्रचार करने वाली कई धर्म–संस्थाएं उसी समय सक्रिय हुई; यथा ब्रह्म समाज, आर्य समाज आदि।[1] सर्वधर्म–समंवय के क्षेत्र में रामकृष्ण परमहंस का भी उद्‌भव हुआ। उन्होंने धार्मिक रूढ़ियों, कट्‌टरता, साम्प्रदायिक मतभेदों एवं द्वेष भावों का खंडन किया।[2]
उनके प्रमुख शिष्य थे नरेन्द्रनाथ दत्त, जो बाद में संन्यस्त होने के बाद विवेकानन्द के नाम से विख्यात हुए। उन्होंने ही अपने गुरू का संदेश समुचे विश्व तक पहुंचाया तथा उनके उपदेश के अनुसार लोक सेवा के आदेश को कार्यान्वित किया। और भारत के अन्तःकरण में बैठकर उसे पहचाना और इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि दरिद्र ही हमारे उपास्य नारायण है।[3]

अभाव एवं अज्ञान से ग्रस्त मनुष्यों के कल्याण के लिए उन्होंने विश्वभर में वेदान्त ज्ञान के प्रचार–प्रसार का कार्य आरम्भ किया। वह अपने गुरू रामकृष्ण परमहंस के इस कथन का मर्म समझते थे, कि भूख से बिलखते आदमी के लिए धर्म नही रोटी चाहिए। अंत में उन्होंने धर्म प्रचार के नाम पर अथाह धन पानी की तरह बहाने वालों की भर्त्सना की और घोषणा की कि भूखे–नंगे लोगों पर मोक्ष दिलाने वाले धर्म लादने की अपेक्षा उनकी रोटी–कपड़े का प्रबंध करना कहीं अधिक महत्वपूर्ण और कल्याणकारी है।[4]

उन्होंने युवावर्ग को अज्ञान और रूढ़ियों के आतंक से युद्ध करने की प्रेरणा दी। अभाव व भूख से संघर्ष करने के लिए कहा तथा अशिक्षा के अंधेरे को नष्ट करके मानवमात्र को दीनता और हीनता से मुक्ति दिलाने का महासमर छेड़ा।
विवेकानन्द का दर्शन अन्तर्राष्ट्रीयता से ओत–प्रोत प्रतीत होता है। उनका राष्ट्रवाद ऐसा था जो दूसरे राष्ट्रों के लिए भी प्रेरणा प्रदान करे। वे अपने देश को ऊँचा उठाने को उत्सुक थे, क्योंकि हमारे देश का चरित्र प्राचीन काल से ऊँचा रहा था। लेकिन बीच में विदेशियों के शासन के फलस्वरूप हम अपने गौरव और साधना को भूल चुके थे। इसलिए विवेकानन्द का उद्‌देश्य देश को अंधकार से जगाकर प्रकाश में लाना था।[5]

वेदान्त दर्षन के अनुसार सम्पूर्ण मानवता में एकत्व विद्यमान है, परन्तु उसका विकास क्रमशः होता है। अन्तर्राष्ट्रीय भावों का विकास सुदृढ़ राष्ट्रीय गौरव के धरातल पर ही हो सकता है। विवेकानन्द के अनुसार शिक्षा का ध्येय राष्ट्रीय गौरव का विकास करना है। वे लिखते है– हे वीर, साहस का कार्य करो। गर्व से कहो, मैं भारतवासी हूँ और प्रत्येक भारतवासी मेरा भाई है। तुम चिल्लाकर कहो, मूर्ख भारतवासी, ब्राह्मण भारतवासी, चांडाल भारतवासी सभी मेरे भाई है। भारतवासी मेरे प्राण है। भारत के देवी–देवता मेरे ईश्वर है। भारत का समाज मेरे बचपन का झूला, जवानी की फुलवारी और बुढ़ापे की काशी है। भाई, कहो कि मिट्‌टी मेरा स्वर्ग है, भारत के कल्याण में मेरा कल्याण है और रात दिन तुम्हारी यही रट लगी रहे, हे गौरीनाथ, हे जगदम्बे, मुझे मनुष्यत्व दो। मां मेरी दुर्बलता दूर कर दो। मां मुझे मनुष्य बना दो।[6]

कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया में तर्क दिया गया है कि स्वामी विवेकानन्द ने धर्म की प्रवृत्ति से युक्त राष्ट्रवाद का उपदेश दिया। सिंगापुर के सांस्कृतिक मंत्री एस0 राजरत्नम ने अपने एक भाषण में कहा था कि यद्यपि विवेकानन्द ने अपने को राजनीति में कभी नही उलझाया, लेकिन वे राष्ट्रवादी आन्दोलन एवं राष्ट्रवादियों के लिए उठने वाली राष्ट्र चेतना की लहर के प्रतीक बन गये।[7]

मद्रास (चेन्नई) विश्वविद्यालय के दर्शन विभाग के अध्यक्ष डॉ0 टी0 एम0 पी0 महादेवन विवेकानन्द को आधुनिक भारत के प्रथम राष्ट्रवादी नेताओं में प्रमुख मानते है तथा उन्हें भारत की अपूर्व राष्ट्रवादी भावना का श्रेय प्रदान करते है। वे लिखते है– वह देशभक्त संन्यासी स्वामी विवेकानन्द का वेदान्ती राष्ट्रवाद ही था जिसने गांधी की नीतियुक्त राजनीति को दिशा दी, जिससे भारत स्वाधीन हुआ था।[8]

कोलम्बिया विश्वविद्यालय के अध्यक्ष डॉ0 गेसरनकर कहते है कि विवेकानन्द ब्रिटिश शासन से मुक्ति की आवश्यकता का अनुभव करते थे क्योंकि उसे वे दमनकारी एवं राष्ट्रीय चेतना की उपलब्धि में बाधक मानते थे। उनके इस राजनीतिक दृष्टिकोण और तीव्र राष्ट्रभावना के ही साथ उनका अपने देशवासियों के प्रति तिरस्कार का भाव था जो अपने राजनैतिक शासकों का अंधानुकरण करते हुए अपनी सांस्कृतिक जड़ों को खो बैठे थे।[9]

स्वामी विवेकानन्द स्वाधीनता के प्रबल पक्षपाती थे। उनके अनुसार स्वाधीनता ही विकास की पहली शर्त है। स्वामीजी ने लिखा है कि न्यूयार्क में आयरिश उपनिवेशवासियों को दोषी अंग्रेजो के पैरों से कुचने हुए कान्तिहीन, निसम्बल, अतिदरिद्र और महामूर्ख। साथ में एक लाठी और उसके सिरे पर लटकटी हुई चीथड़ो की एक छोटी सी गठरी। उनकी चाल और चितवन में डर ही डर समाया रहता था। छः महिनों में भिन्न दृश्य दीखने लगा– अब वह तन कर चल रहा है। उसकी वेशभूषा बदल गई है। उसकी चाल और चितवन में पहले का वह डर दिखाई नही पड़ता। ऐसा कैसे हुआ ? अपने देश में वह आयरिश चारों ओर से घृणा से भरा रहता था। सारी प्रकृति उसे एक स्वर से कह रही थी, बच्चू तू नीच है। तू आजन्म। ऐसा सुनते–सुनते बच्चू को उसी का विश्वास हो गया और उस पर सम्मोह का रंग चढ़ गया कि वह सचमुच अत्यन्त नीच है। पर ज्यों ही उसने अमेरिका में पैर रखे, सभी दिशाओं से ये आवाज जोर से सुनाइ देने लगी– बच्चू तू भी हमारे ही जैसा मनुष्य है। मनुष्य ने ही सब कुछ किया है। तेरे और हमारे समान मनुष्य सब कुछ कर सकता है। हिम्मत बांध, उठ। बच्चू ने सिर उठाया और देखा कि बात तो ठीक ही है।[10] बस उसके अन्दर का सोया हुआ ब्रह्मभाव जाग उठा मानो स्वयं प्रकृति ने कह दिया उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत[11]– उठो जागो और ध्येय की प्राप्ति तक मत रूको।

विवेकानन्द ने जिस समर की घोषणा की थी, वह भारत तक सीमित नही था। उन्होंने जो समर नीति अपनाई थी उसके अनुसार भारत को समर की दृष्टि से एक उपयुक्त स्थान समझ कर ही विवेकानन्द ने विशेष मोर्चाबन्दी की थी। अभाव, अज्ञान तथा रूढ़ियों को इस मोर्चे पर परास्त करके विवेकानन्द इसे एक जागृत राष्ट्र के रूप में खड़ा करना चाहते थे। राष्ट्र के स्तर पर भारत को वह इसलिए नही लाना चाहते थे कि वह स्वार्थ की लड़ाई में उलझकर रह जाए और राजनीतिक राष्ट्र के रूप में वह मेरा–तेरा के स्तर पर अपनी एक अलग सार्वभौम सत्ता का आयोजन करने लगे। वह तो समूचे विश्व के स्तर पर समर ठान बैठे थे। सारे विश्व में अज्ञान का विनाश करके वेदान्त की ज्योति फैलाने का लक्ष्य बना कर चल रहे थे। वेदान्त को वह भारतीयों के गौरवमय अतीत से ही उत्तराधिकार में मिला मानते थे। उनके बल पर दिग्विजय करके प्रमाणित करके प्रमाणित भी कर चुके थे कि चिंतन और जीवन दर्शन के स्तर पर ज्ञानयोग, कर्मयोग की दृष्टि से वेदान्त दर्शन ही सर्वश्रेष्ठ है। इसका उद्भव व विकास भारत में ही हुआ था। संघर्ष का क्षेत्र उन्होंने इसी कारण भारत को चुना था कि जागृत राष्ट्र के रूप में वह एक सुदृढ़ ईकाई बनेगा और इससे समूचे विश्व में अधर्म एवं अज्ञान के साथ चलने वाले युद्ध में विजय प्राप्त होगी।[12]

किन्तु संस्कारों एवं गुलामी के कारण भारत को एक पीढ़ी में पूरी तरह बदलना संभव नही है, यह बात विवेकानन्द ने अनुभव कर ली थी। उन्होंने समझ लिया था कि भारत उनकी जैसी विशालता तक पहुंचकर अपने को इस सीमा तक प्रसारित नही कर सकता कि सारे विश्व को अपने में समेट ले या स्वयं सारे विश्व में व्याप्त हो जाए। इसी लिए उन्होंने स्वीकार किया कि वह जो महासमर छेड़ बैठे थे उनके लायक योद्धा भारत में नही मिल सके। इस सत्य को जानकर ही तो उन्होंने अपने अन्तिम दिनों में कहा था– मैंने इतना कर दिया है कि वह डेढ़ हजार वर्ष तक चलता रहेगा।

समय की यह सीमा विवेकानन्द ने इसी कारण बांधी थी कि वह समकालीन भारत की सीमाएं समझ रहे थे। इसके पहले समर की घोषणा करते समय उन्होंने हमेशा यही कहा था कि मैंने जो आन्दोलन आरम्भ किया है, वह कभी नही रूकेगा, चलता ही जायेगा। स्वयं राजनीति से एकदम कटे रहने पर भी वह देख रहे थे कि जागरण की लहर भारत में अब केवल धर्म के क्षेत्र में ही सीमित नही रह गई थी। हर क्षेत्र में अलग–अलग स्तर पर तेजी से काम होने लगा था। सामाजिक, आर्थिक सुधारो के लिए, शिक्षा के लिए तथा राजनीतिक दृष्टि से राष्ट्रीय चेतना को जगाने के लिए कांग्रेस, सार्वजनिक सभा, गदर पार्टी एवं क्रांतिकारी दलो का संगठन हो रहा था। राजनीतिक स्वाधीनता की गूंज दिनों–दिन तेज हो रही थी। देश के हर भाग में कितने ही महत्वपूर्ण व्यक्ति सक्रिय हो गये थे।

दादाभाई नौरोजी, फिरोजशाह मेहता, लाला लाजपत राय, विपिन चन्द्र पाल, तिलक की शक्तिशाली त्रिगुटी, रानाडे, गोपाल कृष्ण गोखले, रविन्द्रनाथ टैगोर जैसे लोग जननायक के रूप में उभर रहे थे। ब्रिटिश सरकार से सीधी लड़ाई न छेड़कर भी ये लोग राष्ट्र को स्वाधीनता के मार्ग पर ले जा रहे थे। और उनका यह अभियान राजनीतिक अभियान था। इस अभियान का संचालन राजनीति के द्वारा हो रहा था।[13]

गुलामी से मुक्ति पाने का यह अभियान किसी भी स्तर पर छोटा नही हो सकता था। विवेकानन्द के विचार स्पष्ट थे– सनातन शाश्वत धर्म समूचे आन्दोलन को संचालित करता तो उच्चतर उद्देश्य की पूर्ति होती अर्थात भारत राष्ट्र समर्थ होकर विश्वभर में अज्ञान से संघर्ष करके उसे परास्त करता और मानव मात्र में ऐसी चेतना भर देता कि कोई किसी का शत्रु न रह जाता। सारी मानव जाति लोककल्याण की भावना से भर जाती। लेकिन भारत जिस स्तर पर खड़ा था, उसमें संभवतः उतना ही हो सकता था, जो हो रहा था। पाश्चात्य सभ्यता ने सारे संसार पर अपना पंजा फैलाकर अनेक जातियों को दासता में जकड़ लिया था। ऐसी स्थिति में पहली लड़ाई उपनिवेशवाद के खिलाफ होगी– स्वाधीनता पाने के लिए यह अनिवार्य था।

उपनिवेश स्वाधीनता प्राप्त कर लेने के बाद अपनी प्रभुसत्ता बनाये रखने के लिए संघर्ष करते रहेंगे। उस समय भी बलवान देश निर्बलों को दबाकर रहना चाहेंगे। यह सब होता रहेगा। राजनीतिक हितों के लिए संघर्ष होगा। द्वेष चलता रहेगा। उस राग–द्वेष से मुक्त होकर समग्र मानवजाति को एक अभिन्न और समान मानने की भावना तो पीढ़ियों बाद ही उदित होगी। ऐसी स्थिति में लोकहित की दृष्टि से निःस्वार्थ प्रेम, द्वेष–हीनता तथा जनसेवा करते–करते अपना समूचा जीवन उत्सर्ग कर देने का व्रत लेकर कार्यरत रहने वाली संस्था संगठित रूप से कार्य करती रहेगी; यही क्या कम है! वह मानव जाति को उच्चतर मूल्यों की ओर ले जाने का प्रयास करती रहेगी। उसका प्रभाव धीरे–धीरे जनमानस पर होता रहेगा। बहुमुखी प्रयास में सतत् लगे रहने वाले इस यंत्र को चालू कर जाना ही उस स्थिति में सबसे बड़ा काम था।[14]

विवेकानन्द जानते थे कि एक ही दिन में सब कुछ नही हो जायेगा। सब कुछ एक–एक करके होगा। इसी कारण उन्होंने कहा था– मुझे तो अपने संगठन को सूक्ष्म और सक्रिय करना है। ऐसा होते ही मुझे आश्वासन मिल जायेगा कि भारत में मानव कल्याण की सतत् धारा प्रवाहित हो गई है जिसे कोई भी ताकत नही रोक सकती और तब मैं निश्चिन्त होकर सो जाऊँगा।

मंमथनाथ गांगुली ने लिखा है– भारत के विषय में स्वामीजी ने कहा था कि अगले पचास वर्षो के भीतर भारत स्वाधीन होगा। परन्तु जिस प्रकार आमतौर पर देश स्वाधीन हुआ करते है, उस प्रकार नही होगा। बीस वर्षो के भीतर ही एक महायुद्ध होगा। पाश्चात्य देश यदि भौतिकवाद का त्याग नही करते है तो पुनः युद्ध होना अनिवार्य है। स्वाधीन भारत क्रमशः पाश्चात्यों का भौतिकवाद अपना लेगा। नवीन भारत अपने ऐहिक गौरव को म्लान कर देगा। अमेरीका आदि देश धीरे–धीरे आध्यात्मिक होंगे। वे भौतिकवाद के शिखर पर पहुंचकर समझ गये है कि भौतिक वस्तुएं शान्ति नही दे सकती।[15]

स्वामी विवेकानन्द ने सम्बन्धित साहित्यानुरागी सदाशयों को यह बात सुविदित है कि स्वामीजी ने 1897 में इंग्लैण्ड में कहा था कि यदि तुम भारत में प्रचारक भेजना बंद नही करोगे तो पचास वर्ष बाद ही इंग्लैण्ड भारत से अपना बोरिया–बिस्तर लेकर चला आयेगा।[16]

स्वामी विवेकानन्द राजनीति से दूर रहे, लेकिन फिर भी उनकी सबसे बड़ी देन थी राष्ट्रीयता के धार्मिक तथा आध्यात्मिक पक्ष का प्रतिपादन उग्रवादी राजनीतिक विचारधारा के समर्थक उनके राष्ट्रवादी विचारों से प्रभावित हुए। उन्होंने स्पष्ट कहा– ^^भावी 25 वर्षो तक हमारे मस्तिष्क से अन्य देवी–देवताओं को हटा देना चाहिए। यह भारत माता ही एक ऐसा ईश्वर है जो जाग रहा है; उसके हाथ, पैर और कान चारों ओर फैले हुए है। उसमें सभी कुछ समाया हुआ है।** देशभक्ति का महान लक्ष्य उन्होंने भारतीयों के सम्मुख रखा और उन्हें प्रेरणा दी कि वे राष्ट्रोत्थान के महान कार्य में एक जुट हो जाये। उनके विचारों से हजारों लाखों लोग प्रभावित हुए।[17]

धार्मिक नेता होते हुए भी विवेकानन्द का हृदय राष्ट्रीयता से ओतप्रोत था। उन्होंने राजनीति में कभी भी भाग नही लिया परन्तु अपनी लेखनी द्वारा उन्होंने सदैव राष्ट्रीय भावना का पोषण किया। सुभाषचन्द्र बोस के शब्दों में– ^^स्वामी विवेकानन्द का धर्म राष्ट्रीयता को उत्तेजना देने वाला धर्म था। उनके उद्गारों से लोगों में आत्मनिर्भरता और स्वाभिमान के भाव जागे।**[18] उनका दृष्टिकोण प्रगतिशील और अन्तर्राष्ट्रीय था। उनके हृदय में भारतीय संस्कृति व हिन्दू धर्म के प्रति अटल विश्वास था। वे धार्तिक विरोध और घृणा नही थी। देशवासियों को उनका यह संदेश था– ^^समानता, स्वतंत्रता, कर्मण्यता व सरलता की भावना के लिए पश्चिमी बनो पर साथ ही साथ धार्मिक संस्कृति व अन्तर्भावनाओं की दृष्टि से हिन्दू बने रहो।**

वस्तुतः विवेकानन्द पश्चिम की स्वतंत्रता, समानता एवं लोकतंत्र और पूर्व की आध्यात्मिकता का समंवय खहते थे। विचारों की सवतंत्रता के बारे मे उनका कहना था– ^^विचार एवं कर्म की स्वतंत्रता, जीवन विकास और कल्याण की एक मात्र शर्त है, जहाँ उसका अभाव होता है, वहाँ मनुष्य जाए और राष्ट्र अवश्य पतन की ओर जाते है।** विवेकानन्द ने भारत को उसके पिछड़ेपन से उठाकर उसकी सोयी हुई आत्मा को जगाया तथा नवीन भारत के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दिया।[19]

भारत में उभरती हुई राष्ट्रीयता के युग में विवेकानन्द की शिक्षाओं ने राष्ट्रीय नेताओं के समक्ष आध्यात्मिक राष्ट्रवाद का आदर्श प्रस्तुत किया। भारतवासियों को चेतावनी दी कि पाश्चात्य देशों की भौतिकवादी संस्कृति भारतीय राष्ट्र के उत्थान में कभी सहायक सिद्ध नही हो सकती। हिन्दू धर्म की रूढ़िवादी परम्पराओं को अमान्य किया, जिसके अन्तर्गत जातिप्रथा, छूआछूत आदि बुराईयां आ गई थी। ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग तीनों को सही परिपेक्ष्य में रखा। और हिन्दू धर्म के मानवतावादी व आध्यात्मिक स्वरूप को यथार्थ के सन्दर्भ में व्यक्त किया। उन्होंने बताया कि धर्माचरण दरिद्रता से संभव नही है, दरिद्रता निवारण सच्चा मानव धर्म है।[20]

वे मूर्ति पूजा के विरोधी नही थे प्रत्युत् वो मूर्ति पूजा को एक साधन के रूप में मानते थे। जात–पात के भेदभाव, छूआछूत की प्रथा के निवारण और अन्य ऐसी कूप्रथाओं का अन्त करने के लिए उन्होंने शिक्षा की महत्ता पर बल दिया। यद्यपि वे न एक राजनेता थे और न ही वे राजनीति से सहानुभूति रखते थे, लेकिन उनके विचारों में देशभक्ति तथा राष्ट्रप्रेम की भावनाएं भरी पड़ी थी। अतः आध्यात्मिक आधार पर राष्ट्रवाद के विकास में उनकी शिक्षाओं का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा, जिसे बाद में गांधी तथा अन्य राजनीतिज्ञों ने अपनाया। वे कर्म की शिक्षा पर बल देते थे। वे एक अर्थ में एक समन्वयवादी थे। भारतीय आध्यात्म का पाश्चात्य के भौतिकवाद के साथ तथा भारतीय वेदान्त का पाश्चात्य के विज्ञान के साथ समंवय करके वे एक ऐसे मानव समाज की स्थापना पर जोर देते थे जिससे असमानता, अन्याय, शोषण, निरंकुशता आदि को समाप्त किया जाय। मानवता तथा परस्पर भ्रातृत्व की भावना से जीवन यापन करे। इस प्रकार स्वामीजी ने भारत को ही नही अपितु विश्व को मानव धर्म महत्ता सिखायी, जिसका स्रोत उन्होंने वेदान्त और भारतीय संस्कृति में देखा।[21]

परिणामस्वरूप विवेकानन्द की शिक्षाओं ने भारतवासियों को राष्ट्रीयता की चेतना दी और वे राष्ट्रीय स्वतंत्रता के महत्व को समझने लगे। इस परिपेक्ष्य में भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को प्रभावित करने में स्वामी विवेकानन्द और रामकृष्ण मिशन का स्पष्ट योगदान दिखाई देता है।

सन्दर्भ–सूची

1. सत्येन्द्र नाथ मजूमदार : विवेकानन्द चरित, पृ0 307, प्रकाशन– रामकृष्ण आश्रम, धन्तोली, नागपुर, 1977
2. राजेन्द्र प्रसाद गुप्त : स्वामी विवेकानन्द–व्यक्ति और विचार, पृ0 34, प्रकाशक राधा पब्लिकेशन, दरियागंज ,नई दिल्ली–110002, प्रथम संस्करण 1997
3. विपिन चन्द्र : आधुनिक भारत, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, दिल्ली, पृ0 177
4. सबके स्वामीजी, पृ0 37, रामकृष्ण मिशन इंस्टीच्यूट ऑफ कल्चर, गोलपार्क कलकत्ता–700029
5. राजेन्द्र प्रसाद गुप्त : स्वामी विवेकानन्द–व्यक्ति और विचार, पृ0 66
6. लक्ष्मी लाल के ओड, शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि, पृ0 222–25
7. उद्धृत राजेन्द्र प्रसाद गुप्त : स्वामी विवेकानन्द–व्यक्ति और विचार, पृ0 67
8. वही, पृ0 67
9. वही, पृ0 67
10. स्वामी विवेकानन्द अनुवादक द्वारका नाथ तिवारी, शिक्षा, पृ0 3–4
11. कठोपनिषद् – वल्ली 3, 14
12. सुशील कुमार : युग पुरूष स्वामी विवेकानन्द, पृ0 95–96, प्रकाशक– आर्य बुक डिपो करोलबाग, नई दिल्ली–110005, तृतीय संस्करण 1987
13. वही, पृ0 97–98
14. वही, पृ0 98–99
15. युगनायक विवेकानन्द, भाग–3, स्वामी गंभीरानन्द, पृ0 35, रामकृष्ण मठ नागपुर, द्वितीय संस्करण 1996, उद्बोधन वर्ष 62 अंक 10
16. आचार्य (डॉ0) रमेश कृष्ण : ज्ञान पयोधि स्वामी विवेकानन्द, पृ0 111
17. डॉ0 जगन्नाथ प्रसाद मिश्र : आधुनिक भारत का इतिहास, पृ0 464, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान (हिन्दी ग्रंथ अकादमी प्रभाग)
18. S. C. Bose : The Indian Struggle, p. 29
19. कृष्ण दत्त : आधुनिक भारत, पृ0 174, प्रकाशक– अनु बुक्स, शिवाजी रोड, मेरठ, 1989–90
20. दिनेश चन्द्र चतुर्वेदी : राष्ट्रीय आन्दोलन एवं भारतीय राष्ट्रवाद, पृ0 57
21. वही, पृ0 58